श्रीगुरुगीता
स्कंदपुराणान्तर्गत शिवपार्वती-संवाद

श्री गुरुगीता

अनुक्रम

|| अथ प्रथमोऽध्यायः||

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने |
समस्त जगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ||

पहला अध्याय

जो ब्रह्म अचिन्त्य, अव्यक्त, तीनों गुणों से रहित (फिर भी देखनेवालों के अज्ञान की उपाधि से) त्रिगुणात्मक और समस्त जगत का अधिष्ठान रूप है ऐसे ब्रह्म को नमस्कार हो | (1)

ऋषयः ऊचुः

सूत सूत महाप्राज्ञ निगमागमपारग |
गुरुस्वरूपमस्माकं ब्रूहि सर्वमलापहम् ||

ऋषियों ने कहा : हे महाज्ञानी, हे वेद-वेदांगों के निष्णात! प्यारे सूत जी ! सर्व पापों का नाश करनेवाले गुरु का स्वरूप हमें सुनाओ | (2)

यस्य श्रवणमात्रेण देही दुःखाद्विमुच्यते |
येन मार्गेण मुनयः सर्वज्ञत्वं प्रपेदिरे ||
यत्प्राप्य न पुनर्याति नरः संसारबन्धनम् |
तथाविधं परं तत्वं वक्तव्यमधुना त्वया ||

जिसको सुनने मात्र से मनुष्य दुःख से विमुक्त हो जाता है | जिस उपाय से मुनियों ने सर्वज्ञता प्राप्त की है, जिसको प्राप्त करके मनुष्य फ़िर से संसार बन्धन में बँधता नहीं है ऐसे परम तत्व का कथन आप करें | (3, 4)

गुह्यादगुह्यतमं सारं गुरुगीता विशेषतः |
त्वत्प्रसादाच्च श्रोतव्या तत्सर्वं ब्रूहि सूत नः ||

जो तत्व परम रहस्यमय एवं श्रेष्ठ सारभूत है और विशेष कर जो गुरुगीता है वह आपकी कृपा से हम सुनना चाहते हैं | प्यारे सूतजी ! वे सब हमें सुनाइये | (5)

इति संप्रार्थितः सूतो मुनिसंघैर्मुहुर्मुहुः |
कुतूहलेन महता प्रोवाच मधुरं वचः ||

इस प्रकार बार-बार प्रर्थना किये जाने पर सूतजी बहुत प्रसन्न होकर मुनियों के समूह से मधुर वचन बोले | (6)

सूत उवाच
श्रृणुध्वं मुनयः सर्वे श्रद्धया परया मुदा |
वदामि भवरोगघ्नीं गीता मातृस्वरूपिणीम् ||

सूतजी ने कहा : हे सर्व मुनियों ! संसाररूपी रोग का नाश करनेवाली, मातृस्वरूपिणी (माता के समान ध्यान रखने वाली) गुरुगीता कहता हूँ | उसको आप अत्यंत श्रद्धा और प्रसन्नता से सुनिये | (7)

पुरा कैलासशिखरे सिद्धगन्धर्वसेविते|
तत्र कल्पलतापुष्पमन्दिरेऽत्यन्तसुन्दरे ||
व्याघ्राजिने समासिनं शुकादिमुनिवन्दितम् |
बोधयन्तं परं तत्वं मध्येमुनिगणंक्वचित् ||
प्रणम्रवदना शश्वन्नमस्कुर्वन्तमादरात् |
दृष्ट्वा विस्मयमापन्ना पार्वती परिपृच्छति ||

प्राचीन काल में सिद्धों और गन्धर्वों के आवास रूप कैलास पर्वत के शिखर पर कल्पवृक्ष के फूलों से बने हुए अत्यंत सुन्दर मंदिर में, मुनियों के बीच व्याघ्रचर्म पर बैठे हुए, शुक आदि मुनियों द्वारा वन्दन किये जानेवाले और परम तत्व का बोध देते हुए भगवान शंकर

को बार-बार नमस्कार करते देखकर, अतिशय नम्र मुखवाली पार्वति ने आश्चर्यचकित होकर पूछा ।

पार्वत्युवाच

ॐ नमो देव देवेश परात्पर जगदगुरो ।
त्वां नमस्कुर्वते भक्त्या सुरासुरनराः सदा ।।

पार्वती ने कहा: हे ॐकार के अर्थस्वरूप, देवों के देव, श्रेष्ठों के श्रेष्ठ, हे जगदगुरो! आपको प्रणाम हो । देव दानव और मानव सब आपको सदा भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं । (11)

विधिविष्णुमहेन्द्राद्यैर्वन्द्यः खलु सदा भवान् |
नमस्करोषि कस्मै त्वं नमस्काराश्रयः किलः ||

आप ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि के नमस्कार के योग्य हैं | ऐसे नमस्कार के आश्रयरूप होने पर भी आप किसको नमस्कार करते हैं | (12)

भगवन् सर्वधर्मज्ञ व्रतानां व्रतनायकम् |
ब्रूहि मे कृपया शम्भो गुरुमाहात्म्यमुत्तमम् ||

हे भगवान् ! हे सर्व धर्मों के ज्ञाता ! हे शम्भो ! जो व्रत सब व्रतों में श्रेष्ठ है ऐसा उत्तम गुरु-माहात्म्य कृपा करके मुझे कहें | (13)

इति संप्रार्थितः शश्वन्महादेवो महेश्वरः |
आनंदभरितः स्वान्ते पार्वतीमिदमब्रवीत् ||

इस प्रकार (पार्वती देवी द्वारा) बार-बार प्रार्थना किये जाने पर महादेव ने अंतर से खूब प्रसन्न होते हुए पार्वती से इस प्रकार कहा | (14)

महादेव उवाच
न वक्तव्यमिदं देवि रहस्यातिरहस्यकम् |
न कस्यापि पुरा प्रोक्तं त्वद्भक्त्यर्थं वदामि तत् ||

श्री महादेव जी ने कहा: हे देवी ! यह तत्व रहस्यों का भी रहस्य है इसलिए कहना उचित नहीं | पहले किसी से भी नहीं कहा | फिर भी तुम्हारी भक्ति देखकर वह रहस्य कहता हूँ |

मम् रूपासि देवि त्वमतस्तत्कथयामि ते |
लोकोपकारकः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा ||

हे देवी ! तुम मेरा ही स्वरूप हो इसलिए (यह रहस्य) तुमको कहता हूँ | तुम्हारा यह प्रश्न लोक का कल्याणकारक है | ऐसा प्रश्न पहले कभी किसीने नहीं किया |

यस्य देवे परा भक्ति, यथा देवे तथा गुरौ ।
त्स्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।

जिसको ईश्वर में उत्तम भक्ति होती है, जैसी ईश्वर में वैसी ही भक्ति जिसको गुरु में होती है ऐसे महात्माओं को ही यहाँ कही हुई बात समझ में आयेगी |

यो गुरु स शिवः प्रोक्तो, यः शिवः स गुरुस्मृतः ।
विकल्पं यस्तु कुर्वीत स नरो गुरुतल्पगः ।।

जो गुरु हैं वे ही शिव हैं, जो शिव हैं वे ही गुरु हैं | दोनों में जो अन्तर मानता है वह गुरुपत्नीगमन करनेवाले के समान पापी है |

वेद्शास्त्रपुराणानि चेतिहासादिकानि च ।
मंत्रयंत्रविद्यादिनिमोहनोच्चाटनादिकम् ।।
शैवशाक्तागमादिनि ह्यन्ये च बहवो मताः ।
अपभ्रंशाः समस्तानां जीवानां भ्रांतचेतसाम् ।।
जपस्तपोव्रतं तीर्थं यज्ञो दानं तथैव च ।
गुरु तत्वं अविज्ञाय सर्वं व्यर्थं भवेत् प्रिये ।।

हे प्रिये ! वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि मंत्र, यंत्र, मोहन, उच्चाट्न आदि विद्या शैव, शाक्त आगम और अन्य सर्व मत मतान्तर, ये सब बातें गुरुतत्व को जाने बिना भ्रान्त चित्तवाले जीवों को पथभ्रष्ट करनेवाली हैं और जप, तप व्रत तीर्थ, यज्ञ, दान, ये सब व्यर्थ हो जाते हैं | (19, 20, 21)

गुरुबुध्यात्मनो नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने ।
तल्लभार्थं प्रयत्नस्तु कर्तवयशच मनीषिभिः ।।

हे सुमुखी ! आत्मा में गुरु बुद्धि के सिवा अन्य कुछ भी सत्य नहीं है सत्य नहीं है | इसलिये इस आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिये बुद्धिमानों को प्रयत्न करना चाहिये | (22)

गूढाविद्या जगन्माया देहशचाज्ञानसम्भवः |
विज्ञानं यत्प्रसादेन गुरुशब्देन कथयते ||

जगत गूढ़ अविद्यात्मक मायारूप है और शरीर अज्ञान से उत्पन्न हुआ है | इनका विश्लेषणात्मक ज्ञान जिनकी कृपा से होता है उस ज्ञान को गुरु कहते हैं |

देही ब्रह्म भवेद्यस्मात् त्वत्कृपार्थंवदामि तत् |
सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात् ||

जिस गुरुदेव के पादसेवन से मनुष्य सर्व पापों से विशुद्धात्मा होकर ब्रह्मरूप हो जाता है वह तुम पर कृपा करने के लिये कहता हूँ | (24)

शोषणं पापपंकस्य दीपनं ज्ञानतेजसः |
गुरोः पादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम् ||

श्री गुरुदेव का चरणामृत पापरूपी कीचड़ का सम्यक् शोषक है, ज्ञानतेज का सम्यक् उद्यीपक है और संसारसागर का सम्यक तारक है | (25)

अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारकम् |
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत् ||

अज्ञान की जड़ को उखाड़नेवाले, अनेक जन्मों के कर्मों को निवारनेवाले, ज्ञान और वैराग्य को सिद्ध करनेवाले श्रीगुरुदेव के चरणामृत का पान करना चाहिये | (26)

स्वदेशिकस्यैव च नामकीर्तनम्
भवेदनन्तस्यशिवस्य कीर्तनम् |
स्वदेशिकस्यैव च नामचिन्तनम्
भवेदनन्तस्यशिवस्य नामचिन्तनम् ||

अपने गुरुदेव के नाम का कीर्तन अनंत स्वरूप भगवान शिव का ही कीर्तन है | अपने गुरुदेव के नाम का चिंतन अनंत स्वरूप भगवान शिव का ही चिंतन है | (27)

काशीक्षेत्रं निवासश्च जाह्नवी चरणोदकम् |
गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्मनिश्चयः ||

गुरुदेव का निवासस्थान काशी क्षेत्र है | श्री गुरुदेव का पादोदक गंगाजी है | गुरुदेव भगवान विश्वनाथ और निश्चय ही साक्षात् तारक ब्रह्म हैं | (28)

गुरुसेवा गया प्रोक्ता देहः स्यादक्षयो वटः |
तत्पादं विष्णुपादं स्यात् तत्रदत्तमनस्ततम् ||

गुरुदेव की सेवा ही तीर्थराज गया है | गुरुदेव का शरीर अक्षय वटवृक्ष है | गुरुदेव के श्रीचरण भगवान विष्णु के श्रीचरण हैं | वहाँ लगाया हुआ मन तदाकार हो जाता है | (29)

गुरुवक्त्रे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः |
गुरोर्ध्यानं सदा कुर्यात् पुरूषं स्वैरिणी यथा ||

ब्रह्म श्रीगुरुदेव के मुखारविन्द (वचनामृत) में स्थित है | वह ब्रह्म उनकी कृपा से प्राप्त हो जाता है | इसलिये जिस प्रकार स्वेच्छाचारी स्त्री अपने प्रेमी पुरुष का सदा चिंतन करती है उसी प्रकार सदा गुरुदेव का ध्यान करना चाहिये | (30)

स्वाश्रमं च स्वजातिं च स्वकीर्ति पुष्टिवर्धनम् |
एतत्सर्वं परित्यज्य गुरुमेव समाश्रयेत् ||

अपने आश्रम (ब्रह्मचर्याश्रमादि) जाति, कीर्ति (पदप्रतिष्ठा), पालन-पोषण, ये सब छोड़ कर गुरुदेव का ही सम्यक् आश्रय लेना चाहिये | (31)

गुरुवक्त्रे स्थिता विद्या गुरुभक्त्या च लभ्यते |
त्रैलोक्ये स्फुटवक्तारो देवर्षिपितृमानवाः ||

विद्या गुरुदेव के मुख में रहती है और वह गुरुदेव की भक्ति से ही प्राप्त होती है | यह बात तीनों लोकों में देव, ॠषि, पितृ और मानवों द्वारा स्पष्ट रूप से कही गई है | (32)

गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते |
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः ||

'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार (अज्ञान) और 'रु' शब्द का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान) | अज्ञान को नष्ट करनेवाल जो ब्रह्मरूप प्रकाश है वह गुरु है | इसमें कोई संशय नहीं है | (33)

गुकारश्चान्धकारस्तु रुकारस्तन्निरोधकृत् |
अन्धकारविनाशित्वात् गुरुरित्यभिधीयते ||

'गु' कार अंधकार है और उसको दूर करनेवाल 'रु' कार है | अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने के कारण ही गुरु कहलाते हैं | (34)

गुकारश्च गुणातीतो रूपातीतो रुकारकः |
गुणरूपविहीनत्वात् गुरुरित्यभिधीयते ||

'गु' कार से गुणातीत कहा जता है, 'रु' कार से रूपातीत कहा जता है | गुण और रूप से पर होने के कारण ही गुरु कहलाते हैं | (35)

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादि गुणभासकः |
रुकारोऽस्ति परं ब्रह्म मायाभ्रान्तिविमोचकम् ||

गुरु शब्द का प्रथम अक्षर गु माया आदि गुणों का प्रकाशक है और दूसरा अक्षर रु कार माया की भ्रान्ति से मुक्ति देनेवाला परब्रह्म है | (36)

सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदांबुजम् |
वेदान्तार्थप्रवक्तारं तस्मात्संपूजयेद् गुरुम् ||

गुरु सर्व श्रुतिरूप श्रेष्ठ रत्नों से सुशोभित चरणकमलवाले हैं और वेदान्त के अर्थ के प्रवक्ता हैं | इसलिये श्री गुरुदेव की पूजा करनी चाहिये | (37)

यस्यस्मरणमात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् |
सः एव सर्वसम्पत्तिः तस्मात्संपूजयेद् गुरुम् ||

जिनके स्मरण मात्र से ज्ञान अपने आप प्रकट होने लगता है और वे ही सर्व (शमदमदि) सम्पदारूप हैं | अतः श्री गुरुदेव की पूजा करनी चाहिये | (38)

संसारवृक्षमारूढ़ाः पतन्ति नरकार्णवे ।
यस्तानुद्धरते सर्वान् तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

संसाररूपी वृक्ष पर चढ़े हुए लोग नरकरूपी सागर में गिरते हैं | उन सबका उद्धार करनेवाले श्री गुरुदेव को नमस्कार हो | (39)

एक एव परो बन्धुर्विषमे समुपस्थिते ।
गुरुः सकलधर्मात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

जब विकट परिस्थिति उपस्थित होती है तब वे ही एकमात्र परम बांधव हैं और सब धर्मों के आत्मस्वरूप हैं | ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार हो | (40)

भवारण्यप्रविष्टस्य दिङ्मोहभ्रान्तचेतसः ।
येन सन्दर्शितः पन्थाः तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

संसार रूपी अरण्य में प्रवेश करने के बाद दिग्मूढ़ की स्थिति में (जब कोई मार्ग नहीं दिखाई देता है), चित्त भ्रमित हो जाता है , उस समय जिसने मार्ग दिखाया उन श्री गुरुदेव को नमस्कार हो | (41)

तापत्रयाग्नितप्तानां अशान्तप्राणीनां भुवि ।
गुरुरेव परा गंगा तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।

इस पृथ्वी पर त्रिविध ताप (आधि-व्याधि-उपाधि) रूपी अग्नी से जलने के कारण अशांत हुए प्राणियों के लिए गुरुदेव ही एकमात्र उत्तम गंगाजी हैं | ऐसे श्री गुरुदेवजी को नमस्कार हो | (42)

सप्तसागरपर्यन्तं तीर्थस्नानफलं तु यत् ।
गुरुपादपयोबिन्दोः सहस्रांशेन तत्फलम् ।।

सात समुद्र पर्यन्त के सर्व तीर्थों में स्नान करने से जितना फल मिलता है वह फल श्रीगुरुदेव के चरणामृत के एक बिन्दु के फल का हजारवाँ हिस्सा है | (43)

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन |
लब्ध्वा कुलगुरुं सम्यग्गुरुमेव समाश्रयेत् ||

यदि शिवजी नारज़ हो जायें तो गुरुदेव बचानेवाले हैं, किन्तु यदि गुरुदेव नाराज़ हो जायें तो बचानेवाला कोई नहीं | अतः गुरुदेव को संप्राप्त करके सदा उनकी शरण में रेहना चाहिए | (44)

गुकारं च गुणातीतं रुकारं रुपवर्जितम् |
गुणातीतमरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः ||

गुरु शब्द का गु अक्षर गुणातीत अर्थ का बोधक है और रु अक्षर रूपरहित स्थिति का बोधक है | ये दोनों (गुणातीत और रूपातीत) स्थितियाँ जो देते हैं उनको गुरु कहते हैं | (45)

अत्रिनेत्रः शिवः साक्षात् द्विबाहुश्च हरिः स्मृतः |
योऽचतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरुः कथितः प्रिये ||

हे प्रिये ! गुरु ही त्रिनेत्ररहित (दो नेत्र वाले) साक्षात् शिव हैं, दो हाथ वाले भगवान विष्णु हैं और एक मुखवाले ब्रह्माजी हैं | (46)

देवकिन्नरगन्धर्वाः पितृयक्षास्तु तुम्बुरुः |
मुनयोऽपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणे विधिम् ||

देव, किन्नर, गंधर्व, पितृ, यक्ष, तुम्बुरु (गंधर्व का एक प्रकार) और मुनि लोग भी गुरुसेवा की विधि नहीं जानते | (47)

तार्किकाश्छान्दसाश्चैव देवज्ञाः कर्मठः प्रिये |
लौकिकास्ते न जानन्ति गुरुतत्वं निराकुलम् ||

हे प्रिये ! तार्किक, वैदिक, ज्योतिषि, कर्मकांडी तथा लोकिकजन निर्मल गुरुतत्व को नहीं जानते | (48)

यज्ञिनोऽपि न मुक्ताः स्युः न मुक्ताः योगिनस्तथा।
तापसा अपि नो मुक्त गुरुतत्वात्पराङ्मुखाः ||

यदि गुरुतत्व से प्राङ्मुख हो जाये तो याज्ञिक मुक्ति नहीं पा सकते, योगी मुक्त नहीं हो सकते और तपस्वी भी मुक्त नहीं हो सकते | (49)

न मुक्तास्तु गन्धर्वः पितृयक्षास्तु चारणाः |
ॠष्यः सिद्धदेवाद्याः गुरुसेवापराङ्मुखाः ||

गुरुसेवा से विमुख गंधर्व, पितृ, यक्ष, चारण, ॠषि, सिद्ध और देवता आदि भी मुक्त नहीं होंगे |

|| इति श्री स्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे श्री गुरुगीतायां प्रथमोऽध्यायः ||

|| अथ द्वितीयोऽध्यायः ||

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम् |
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्
भावतीतं त्रिगुणरहितं सदगुरुं तं नमामि ||

दूसरा अध्याय

जो ब्रह्मानंदस्वरूप हैं, परम सुख देनेवाले हैं जो केवल ज्ञानस्वरूप हैं, (सुख, दुःख, शीत-उष्ण आदि) द्वन्द्वों से रहित हैं, आकाश के समान सूक्ष्म और सर्वव्यापक हैं, तत्वमसि आदि महावाक्यों के लक्ष्यार्थ हैं, एक हैं, नित्य हैं, मलरहित हैं, अचल हैं, सर्व बुद्धियों के साक्षी हैं, भावना से परे हैं, सत्व, रज और तम तीनों गुणों से रहित हैं ऐसे श्री सदगुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ | (52)

गुरुपदिष्टमार्गेण मनः शिद्धिं तु कारयेत् |
अनित्यं खण्डयेत्सर्वं यत्किंचिदात्मगोचरम् ||

श्री गुरुदेव के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से मन की शुद्धि करनी चाहिए | जो कुछ भी अनित्य वस्तु अपनी इन्द्रियों की विषय हो जायें उनका खण्डन (निराकरण) करना चाहिए | (53)

किमत्रं बहुनोक्तेन शास्त्रकोटिशतैरपि |
दुर्लभा चित्तविश्रान्तिः विना गुरुकृपां पराम् ||

यहाँ ज्यादा कहने से क्या लाभ ? श्री गुरुदेव की परम कृपा के बिना करोड़ों शास्त्रों से भी चित्त की विश्रांति दुर्लभ है | (54)

करुणाखड्गपातेन छित्वा पाशाष्टकं शिशोः |
सम्यगानन्दजनकः सदगुरु सोऽभिधीयते ||
एवं श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दा करोति यः |
स याति नरकान् घोरान् यावच्चन्द्रदिवाकरौ ||

करुणारूपी तलवार के प्रहार से शिष्य के आठों पाशों (संशय, दया, भय, संकोच, निन्दा,

प्रतिष्ठा, कुलाभिमान और संपत्ति) को काटकर निर्मल आनंद देनेवाले को सदगुरु कहते हैं | ऐसा सुनने पर भी जो मनुष्य गुरुनिन्दा करता है, वह (मनुष्य) जब तक सूर्यचन्द्र का अस्तित्व रहता है तब तक घोर नरक में रहता है | (55, 56)

यावत्कल्पान्तको देहस्तावद्देवि गुरुं स्मरेत् |
गुरुलोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत् ||

हे देवी ! देह कल्प के अन्त तक रहे तब तक श्री गुरुदेव का स्मरण करना चाहिए और आत्मज्ञानी होने के बाद भी (स्वच्छन्द अर्थात् स्वरूप का छन्द मिलने पर भी) शिष्य को गुरुदेव की शरण नहीं छोड़नी चाहिए | (57)

हुंकारेण न वक्तव्यं प्राज्ञशिष्यै कदाचन |
गुरुराग्रे न वक्तव्यमसत्यं तु कदाचन ||

श्री गुरुदेव के समक्ष प्रज्ञावान् शिष्य को कभी हुँकार शब्द से (मैने ऐसे किया... वैसा किया) नहीं बोलना चाहिए और कभी असत्य नहीं बोलना चाहिए | (58)

गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य गुरुसान्निध्यभाषणः |
अरण्ये निर्जले देशे संभवेद् ब्रह्मराक्षसः ||

गुरुदेव के समक्ष जो हुँकार शब्द से बोलता है अथवा गुरुदेव को तू कहकर जो बोलता है वह निर्जन मरुभूमि में ब्रह्मराक्षस होता है | (59)

अद्वैतं भावयेन्नित्यं सर्वावस्थासु सर्वदा |
कदाचिदपि नो कुर्यादद्वैतं गुरुसन्निधौ ||

सदा और सर्व अवस्थाओं में अद्वैत की भावना करनी चाहिए परन्तु गुरुदेव के साथ अद्वैत की भावना कदापि नहीं करनी चाहिए | (60)

दृश्यविस्मृतिपर्यन्तं कुर्याद् गुरुपदार्चनम् |
तादृशस्यैव कैवल्यं न च तद्व्यतिरेकिणः ||

जब तक दृश्य प्रपंच की विस्मृति न हो जाय तब तक गुरुदेव के पावन चरणारविन्द की पूजा-अर्चना करनी चाहिए | ऐसा करनेवाले को ही कैवल्यपद की प्रप्ति होती है, इसके

विपरीत करनेवाले को नहीं होती | (61)

अपि संपूर्णतत्वज्ञो गुरुत्यागी भवेद्दा |
भवेत्येव हि तस्यान्तकाले विक्षेपमुत्कटम् ||

संपूर्ण तत्वज्ञ भी यदि गुरु का त्याग कर दे तो मृत्यु के समय उसे महान् विक्षेप अवश्य हो जाता है | (62)

गुरौ सति स्वयं देवी परेषां तु कदाचन |
उपदेशं न वै कुर्यात् तदा चेद्राक्षसो भवेत् ||

हे देवी ! गुरु के रहने पर अपने आप कभी किसी को उपदेश नहीं देना चाहिए | इस प्रकार उपदेश देनेवाला ब्रह्मराक्षस होता है | (63)

न गुरुराश्रमे कुर्यात् दुष्पानं परिसर्पणम् |
दीक्षा व्याख्या प्रभुत्वादि गुरोराज्ञां न कारयेत् ||

गुरु के आश्रम में नशा नहीं करना चाहिए, टहलना नहीं चाहिए | दीक्षा देना, व्याख्यान करना, प्रभुत्व दिखाना और गुरु को आज्ञा करना, ये सब निषिद्ध हैं | (64)

नोपाश्रमं च पर्यंकं न च पादप्रसारणम् |
नांगभोगादिकं कुर्यान्न लीलामपरामपि ||

गुरु के आश्रम में अपना छप्पर और पलंग नहीं बनाना चाहिए, (गुरुदेव के सम्मुख) पैर नहीं पसारना, शरीर के भोग नहीं भोगने चाहिए और अन्य लीलाएँ नहीं करनी चाहिए | (65)

गुरुणां सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लंघयेत् |
कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ दासवन्निवसेद् गुरौ ||

गुरुओं की बात सच्ची हो या झूठी, परन्तु उसका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिए | रात और दिन गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए उनके सान्निध्य में दास बन कर रहना चाहिए | (66)

अदत्तं न गुरोर्द्रव्यमुपभुंजीत कहिर्चित् ।
दत्तं च रंकवद् ग्राह्यं प्राणोप्येतेन लभ्यते ।।

जो द्रव्य गुरुदेव ने नहीं दिया हो उसका उपयोग कभी नहीं करना चाहिए | गुरुदेव के दिये हुए द्रव्य को भी गरीब की तरह ग्रहण करना चाहिए | उससे प्राण भी प्राप्त हो सकते हैं | (67)

पादुकासनशय्यादि गुरुणा यदभिष्टितम् ।
नमस्कुर्वीत तत्सर्वं पादाभ्यां न स्पृशेत् क्वचित् ।।

पादुका, आसन, बिस्तर आदि जो कुछ भी गुरुदेव के उपयोग में आते हों उन सर्व को नमस्कार करने चाहिए और उनको पैर से कभी नहीं छूना चाहिए | (68)

गच्छतः पृष्ठतो गच्छेत् गुरुच्छायां न लंघयेत् ।
नोल्बणं धारयेद्वेषं नालंकारास्ततोल्बणान् ।।

चलते हुए गुरुदेव के पीछे चलना चाहिए, उनकी परछाईं का भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए | गुरुदेव के समक्ष कीमती वेशभूषा, आभूषण आदि धारण नहीं करने चाहिए | (69)

गुरुनिन्दाकरं दृष्ट्वा धावयेदथ वासयेत् ।
स्थानं वा तत्परित्याज्यं जिह्वाच्छेदाक्षमो यदि ।।

गुरुदेव की निन्दा करनेवाले को देखकर यदि उसकी जिह्वा काट डालने में समर्थ न हो तो उसे अपने स्थान से भगा देना चाहिए | यदि वह ठहरे तो स्वयं उस स्थान का परित्याग करना चाहिए | (70)

मुनिभिः पन्नगैर्वापि सुरैवा शापितो यदि ।
कालमृत्युभयाद्वापि गुरुः संत्राति पार्वति ।।

हे पर्वती ! मुनियों पन्नगों और देवताओं के शाप से तथा यथा काल आये हुए मृत्यु के भय से भी शिष्य को गुरुदेव बचा सकते हैं | (71)

विजानन्ति महावाक्यं गुरोश्चरणसेवया ।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः ।।

गुरुदेव के श्रीचरणों की सेवा करके महावाक्य के अर्थ को जो समझते हैं वे ही सच्चे संन्यासी हैं, अन्य तो मात्र वेशधारी हैं | (72)

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत् परम् ।
भासयन् ब्रह्मभावं च दीपो दीपान्तरं यथा ।।

गुरु वे हैं जो नित्य, निर्गुण, निराकार, परम ब्रह्म का बोध देते हुए, जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को प्रज्ज्वलित करता है वैसे, शिष्य में ब्रह्मभाव को प्रकटाते हैं | (73)

गुरुप्रादतः स्वात्मन्यात्मारामनिरिक्षणात् ।
समता मुक्तिमर्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते ।।

श्री गुरुदेव की कृपा से अपने भीतर ही आत्मानंद प्राप्त करके समता और मुक्ति के मार्ग द्वार शिष्य आत्मज्ञान को उपलब्ध होता है | (74)

स्फ़टिके स्फ़ाटिकं रूपं दर्पणे दर्पणो यथा ।
तथात्मनि चिदाकारमानन्दं सोऽहमित्युत ।।

जैसे स्फ़टिक मणि में स्फ़टिक मणि तथा दर्पण में दर्पण दिख सकता है उसी प्रकार आत्मा में जो चित् और आनंदमय दिखाई देता है वह मैं हूँ | (75)

अंगुष्ठमात्रं पुरुषं ध्यायेच्च चिन्मयं हृदि ।
तत्र स्फ़ुरति यो भावः श्रृणु तत्कथयामि ते ।।

हृदय में अंगुष्ठ मात्र परिणाम वाले चैतन्य पुरुष का ध्यान करना चाहिए | वहाँ जो भाव स्फ़ुरित होता है वह मैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो | (76)

अजोऽहममरोऽहं च ह्यनादिनिधनोह्यहम् ।
अविकारश्चिदानन्दो ह्यणियान् महतो महान् ।।

मैं अजन्मा हूँ, मैं अमर हूँ, मेरा आदि नहीं है, मेरी मृत्यु नहीं है | मैं निर्विकार हूँ, मैं चिदानन्द हूँ, मैं अणु से भी छोटा हूँ और महान् से भी महान् हूँ | (77)

अपूर्वमपरं नित्यं स्वयं ज्योतिर्निरामयम् |
विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम् ||
अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम् |
निःशब्दं तु विजानीयात्स्वाभावाद् ब्रह्म पर्वति ||

हे पर्वती ! ब्रह्म को स्वभाव से ही अपूर्व (जिससे पूर्व कोई नहीं ऐसा), अद्वितीय, नित्य, ज्योतिस्वरूप, निरोग, निर्मल, परम आकाशस्वरूप, अचल, आनन्दस्वरूप, अविनाशी, अगम्य, अगोचर, नाम-रूप से रहित तथा निःशब्द जानना चाहिए | (78, 79)

यथा गन्धस्वभावत्वं कर्पूरकुसुमादिषु |
शीतोष्णस्वभावत्वं तथा ब्रह्मणि शाश्वतम् ||

जिस प्रकार कपूर, फ़ूल इत्यादि में गन्धत्व, (अग्नि में) उष्णता और (जल में) शीतलता स्वभाव से ही होते हैं उसी प्रकार ब्रह्म में शश्वतता भी स्वभावसिद्ध है | (80)

यथा निजस्वभावेन कुंडलकटकादयः |
सुवर्णत्वेन तिष्ठन्ति तथाऽहं ब्रह्म शाश्वतम् ||

जिस प्रकार कटक, कुण्डल आदि आभूषण स्वभाव से ही सुवर्ण हैं उसी प्रकार मैं स्वभाव से ही शाश्वत ब्रह्म हूँ | (81)

स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित् |
कीटो भृंग इव ध्यानात् यथा भवति तादृशः ||

स्वयं वैसा होकर किसी-न-किसी स्थान में रहना | जैसे कीडा भ्रमर का चिन्तन करते-करते भ्रमर हो जाता है वैसे ही जीव ब्रह्म का धयान करते-करते ब्रह्मस्वरूप हो जाता है | (82)

गुरोर्ध्यानेनैव नित्यं देही ब्रह्ममयो भवेत् |
स्थितश्च यत्रकुत्रापि मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ||

सदा गुरुदेव का ध्यान करने से जीव ब्रह्ममय हो जाता है | वह किसी भी स्थान में रहता हो फ़िर भी मुक्त ही है | इसमें कोई संशय नहीं है | (83)

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं यशः श्री समुदाहृतम् ।
षड्गुणैश्वर्ययुक्तो हि भगवान् श्री गुरुः प्रिये ।।

हे प्रिये ! भगवत्स्वरूप श्री गुरुदेव ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, यश, लक्ष्मी और मधुरवाणी, ये छः गुणरूप ऐश्वर्य से संपन्न होते हैं | (84)

गुरुः शिवो गुरुर्देवो गुरुर्बन्धुः शरीरिणाम् ।
गुरुरात्मा गुरुर्जीवो गुरोरन्यन्न विद्यते ।।

मनुष्य के लिए गुरु ही शिव हैं, गुरु ही देव हैं, गुरु ही बांधव हैं गुरु ही आत्मा हैं और गुरु ही जीव हैं | (सचमुच) गुरु के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है | (85)

एकाकी निस्पृहः शान्तः चिंतासूयादिवर्जितः ।
बाल्यभावेन यो भाति ब्रह्मज्ञानी स उच्यते ।।

अकेला, कामनारहित, शांत, चिन्तारहित, ईर्ष्यारहित और बालक की तरह जो शोभता है वह ब्रह्मज्ञानी कहलाता है | (86)

न सुखं वेदशास्त्रेषु न सुखं मंत्रयंत्रके ।
गुरोः प्रसादादन्यत्र सुखं नास्ति महीतले ।।

वेदों और शास्त्रों में सुख नहीं है, मंत्र और यंत्र में सुख नहीं है | इस पृथ्वी पर गुरुदेव के कृपाप्रसाद के सिवा अन्यत्र कहीं भी सुख नहीं है | (87)

चावार्कवैष्णवमते सुखं प्रभाकरे न हि ।
गुरोः पादान्तिके यद्वत्सुखं वेदान्तसम्मतम् ।।

गुरुदेव के श्री चरणों में जो वेदान्तनिर्दिष्ट सुख है वह सुख न चावार्क मत में, न वैष्णव मत में और न प्रभाकर (सांखय) मत में है | (88)

न तत्सुखं सुरेन्द्रस्य न सुखं चक्रवर्तिनाम् ।
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः ।।

एकान्तवासी वीतराग मुनि को जो सुख मिलता है वह सुख न इन्द्र को और न चक्रवर्ती राजाओं को मिलता है। (89)

नित्यं ब्रह्मरसं पीत्वा तृप्तो यः परमात्मनि ।
इन्द्रं च मन्यते रंकं नृपाणां तत्र का कथा ।।

हमेशा ब्रह्मरस का पान करके जो परमात्मा में तृप्त हो गया है वह (मुनि) इन्द्र को भी गरीब मानता है तो राजाओं की तो बात ही क्या ? (90)

यतः परमकैवल्यं गुरुमार्गेण वै भवेत् ।
गुरुभक्तिरतिः कार्या सर्वदा मोक्षकांक्षिभिः ।।

मोक्ष की आकांक्षा करनेवालों को गुरुभक्ति खूब करनी चाहिए, क्योंकि गुरुदेव के द्वारा ही परम मोक्ष की प्राप्ति होती है। (91)

एक एवाद्वितीयोऽहं गुरुवाक्येन निश्चितः ।।
एवमभ्यास्ता नित्यं न सेव्यं वै वनान्तरम् ।।
अभ्यासान्निमिषणैव समाधिमधिगच्छति ।
आजन्मजनितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।।

गुरुदेव के वाक्य की सहायता से जिसने ऐसा निश्चय कर लिया है कि मैं एक और अद्वितीय हूँ और उसी अभ्यास में जो रत है उसके लिए अन्य वनवास का सेवन आवश्यक नहीं है, क्योंकि अभ्यास से ही एक क्षण में समाधि लग जाती है और उसी क्षण इस जन्म तक के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। (92, 93)

गुरुर्विष्णुः सत्त्वमयो राजसश्चतुराननः |
तामसो रूद्ररूपेण सृजत्यवति हन्ति च ||

गुरुदेव ही सत्वगुणी होकर विष्णुरूप से जगत का पालन करते हैं, रजोगुणी होकर ब्रह्मारूप से जगत का सर्जन करते हैं और तमोगुणी होकर शंकर रूप से जगत का संहार करते हैं | (94)

तस्यावलोकनं प्राप्य सर्वसंगविवर्जितः |
एकाकी निःस्पृहः शान्तः स्थातव्यं तत्प्रसादतः ||

उनका (गुरुदेव का) दर्शन पाकर, उनके कृपाप्रसाद से सर्व प्रकार की आसक्ति छोड़कर एकाकी, निःस्पृह और शान्त होकर रहना चाहिए | (95)

सर्वज्ञपदमित्याहुर्देही सर्वमयो भुवि |
सदाऽनन्दः सदा शान्तो रमते यत्र कुत्रचित् ||

जो जीव इस जगत में सर्वमय, आनंदमय और शान्त होकर सर्वत्र विचरता है उस जीव को सर्वज्ञ कहते हैं | (96)

यत्रैव तिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनः |
मुक्तस्य लक्षणं देवी तवाग्रे कथितं मया ||

ऐसा पुरुष जहाँ रहता है वह स्थान पुण्यतीर्थ है | हे देवी ! तुम्हारे सामने मैंने मुक्त पुरूष का लक्षण कहा | (97)

यद्यप्यधीता निगमाः षडंगा आगमाः प्रिये |
आध्यामादिनि शास्त्राणि ज्ञानं नास्ति गुरुं विना ||

हे प्रिये ! मनुष्य चाहे चारों वेद पढ़ ले, वेद के छः अंग पढ़ ले, आध्यात्मशास्त्र आदि अन्य सर्व शास्त्र पढ़ ले फ़िर भी गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता | (98)

शिवपूजारतो वापि विष्णुपूजारतोऽथवा |
गुरुतत्वविहीनश्चेत्तत्सर्वं व्यर्थमेव हि ||

शिवजी की पूजा में रत हो या विष्णु की पूजा में रत हो, परन्तु गुरुतत्व के ज्ञान से रहित हो तो वह सब व्यर्थ है | (99)

सर्वं स्यात्सफलं कर्म गुरुदीक्षाप्रभावतः |
गुरुलाभात्सर्वलाभो गुरुहीनस्तु बालिशः ||

गुरुदेव की दीक्षा के प्रभाव से सब कर्म सफल होते हैं | गुरुदेव की संप्राप्ति रूपी परम लाभ से अन्य सर्वलाभ मिलते हैं | जिसका गुरु नहीं वह मूर्ख है | (100)

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वसंगविवर्जितः |
विहाय शास्त्रजालानि गुरुमेव समाश्रयेत् ||

इसलिए सब प्रकार के प्रयत्न से अनासक्त होकर , शास्त्र की मायाजाल छोड़कर गुरुदेव की ही शरण लेनी चाहिए | (101)

ज्ञानहीनो गुरुत्याज्यो मिथ्यावादी विडंबकः |
स्वविश्रान्ति न जानाति परशान्तिं करोति किम् ||

ज्ञानरहित, मिथ्या बोलनेवाले और दिखावट करनेवाले गुरु का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि जो अपनी ही शांति पाना नहीं जानता वह दूसरों को क्या शांति दे सकेगा | (102)

शिलायाः किं परं ज्ञानं शिलासंघप्रतारणे |
स्वयं तर्तुं न जानाति परं निसतारेयेत्कथम् ||

पत्थरों के समूह को तैराने का ज्ञान पत्थर में कहाँ से हो सकता है ? जो खुद तैरना नहीं जानता वह दूसरों को क्या तैरायेगा | (103)

न वन्दनीयास्ते कष्टं दर्शनाद् भ्रान्तिकारकः |
वर्जयेतान् गुरुन् दूरे धीरानेव समाश्रयेत् ||

जो गुरु अपने दर्शन से (दिखावे से) शिष्य को भ्रान्ति में ड़ालता है ऐसे गुरु को प्रणाम नहीं करना चाहिए | इतना ही नहीं दूर से ही उसका त्याग करना चाहिए | ऐसी स्थिति में धैर्यवान् गुरु का ही आश्रय लेना चाहिए | (104)

पाखण्डिनः पापरता नास्तिका भेदबुद्धयः |
स्त्रीलम्पटा दुराचाराः कृतघ्ना बकवृतयः ||
कर्मभ्रष्टाः क्षमानष्टाः निन्द्यतर्कैश्च वादिनः |
कामिनः क्रोधिनश्चैव हिंस्राश्चंड़ाः शठस्तथा ||
ज्ञानलुप्ता न कर्तव्या महापापास्तथा प्रिये |
एभ्यो भिन्नो गुरुः सेव्य एकभक्त्या विचार्य च ||

भेदबुद्धि उत्तन्न करनेवाले, स्त्रीलम्पट, दुराचारी, नमकहराम, बगुले की तरह ठगनेवाले, क्षमा रहित निन्दनीय तर्कों से वितंडावाद करनेवाले, कामी क्रोधी, हिंसक, उग्र, शठ तथा अज्ञानी और महापापी पुरुष को गुरु नहीं करना चाहिए | ऐसा विचार करके ऊपर दिये लक्षणों से भिन्न लक्षणोंवाले गुरु की एकनिष्ठ भक्ति से सेवा करनी चाहिए | (105, 106, 107)

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं धर्मसारं मयोदितम् |
गुरुगीता समं स्तोत्रं नास्ति तत्वं गुरोः परम् ||

गुरुगीता के समान अन्य कोई स्तोत्र नहीं है | गुरु के समान अन्य कोई तत्व नहीं है | समग्र धर्म का यह सार मैंने कहा है, यह सत्य है, सत्य है और बार-बार सत्य है | (108)

अनेन यद् भवेद् कार्यं तद्वदामि तव प्रिये |
लोकोपकारकं देवि लौकिकं तु विवर्जयेत् ||

हे प्रिये ! इस गुरुगीता का पाठ करने से जो कार्य सिद्ध होता है अब वह कहता हूँ | हे देवी ! लोगों के लिए यह उपकारक है | मात्र लौकिक का त्याग करना चाहिए | (109)

लौकिकाद्धर्मतो याति ज्ञानहीनो भवार्णवे |
ज्ञानभावे च यत्सर्वं कर्म निष्कर्म शाम्यति ||

जो कोई इसका उपयोग लौकिक कार्य के लिए करेगा वह ज्ञानहीन होकर संसाररूपी सागर में गिरेगा | ज्ञान भाव से जिस कर्म में इसका उपयोग किया जाएगा वह कर्म निष्कर्म में परिणत होकर शांत हो जाएगा | (110)

इमां तु भक्तिभावेन पठेद्वै शृणुयादपि |
लिखित्वा यत्प्रसादेन तत्सर्वं फलमश्नुते ||

भक्ति भाव से इस गुरुगीता का पाठ करने से, सुनने से और लिखने से वह (भक्त) सब फल भोगता है | (111)

गुरुगीतामिमां देवि हृदि नित्यं विभावय |
महाव्याधिगतैर्दुःखैः सर्वदा प्रजपेन्मुदा ||

हे देवी ! इस गुरुगीता को नित्य भावपूर्वक हृदय में धारण करो | महाव्याधिवाले दुःखी लोगों को सदा आनंद से इसका जप करना चाहिए | (112)

गुरुगीताक्षरैकैकं मंत्रराजमिदं प्रिये |
अन्ये च विविधा मंत्राः कलां नार्हन्ति षोड्शीम् ||

हे प्रिये ! गुरुगीता का एक-एक अक्षर मंत्रराज है | अन्य जो विविध मंत्र हैं वे इसका सोलहवाँ भाग भी नहीं | (113)

अनन्तफलमाप्नोति गुरुगीताजपेन तु |
सर्वपापहरा देवि सर्वदारिद्रयनाशिनी ||

हे देवी ! गुरुगीता के जप से अनंत फल मिलता है | गुरुगीता सर्व पाप को हरने वाली और सर्व दारिद्रय का नाश करने वाली है | (114)

अकालमृत्युहंत्री च सर्वसंकटनाशिनी |
यक्षराक्षसभूतादिचोरव्याघ्रविघातिनी ||

गुरुगीता अकाल मृत्यु को रोकती है, सब संकटों का नाश करती है, यक्ष राक्षस, भूत, चोर और बाघ आदि का घात करती है | (115)

सर्वोपद्रवकुष्ठदिदुष्टदोषनिवारिणी |
यत्फलं गुरुसान्निध्यात्तत्फलं पठनाद् भवेत् ||

गुरुगीता सब प्रकार के उपद्रवों, कुष्ठ और दुष्ट रोगों और दोषों का निवारण करनेवाली है | श्री गुरुदेव के सान्निध्य से जो फल मिलता है वह फल इस गुरुगीता का पाठ करने से मिलता है | (116)

महाव्याधिहरा सर्वविभूतेः सिद्धिदा भवेत् |
अथवा मोहने वश्ये स्वयमेव जपेत्सदा ||

इस गुरुगीता का पाठ करने से महाव्याधि दूर होती है, सर्व ऐश्वर्य और सिद्धियों की प्राप्ति होती है | मोहन में अथवा वशीकरण में इसका पाठ स्वयं ही करना चाहिए | (117)

मोहनं सर्वभूतानां बन्धमोक्षकरं परम् |
देवराज्ञां प्रियकरं राजानं वशमानयेत् ||

इस गुरुगीता का पाठ करनेवाले पर सर्व प्राणी मोहित हो जाते हैं बन्धन में से परम मुक्ति मिलती है, देवराज इन्द्र को वह प्रिय होता है और राजा उसके वश होता है | (118)

मुखस्तम्भकरं चैव गुणाणां च विवर्धनम् |
दुष्कर्मनाश्नं चैव तथा सत्कर्मसिद्धिदम् ||

इस गुरुगीता का पाठ शत्रु का मुख बन्द करनेवाला है, गुणों की वृद्धि करनेवाला है, दुष्कृत्यों का नाश करनेवाला और सत्कर्म में सिद्धि देनेवाला है | (119)

असिद्धं साधयेत्कार्यं नवग्रहभयापहम् |
दुःस्वप्ननाशनं चैव सुस्वप्नफलदायकम् ||

इसका पाठ असाध्य कार्यों की सिद्धि कराता है, नव ग्रहों का भय हरता है, दुःस्वप्न का नाश करता है और सुस्वप्न के फल की प्राप्ति कराता है | (120)

मोहशान्तिकरं चैव बन्धमोक्षकरं परम् |
स्वरूपज्ञाननिलयं गीतशास्त्रमिदं शिवे ||

हे शिवे ! यह गुरुगीतारूपी शास्त्र मोह को शान्त करनेवाला, बन्धन में से परम मुक्त करनेवाला और स्वरूपज्ञान का भण्डार है | (121)

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चयम् |
नित्यं सौभाग्यदं पुण्यं तापत्रयकुलापहम् ||

व्यक्ति जो-जो अभिलाषा करके इस गुरुगीता का पठन-चिन्तन करता है उसे वह निश्चय ही प्राप्त होता है | यह गुरुगीता नित्य सौभाग्य और पुण्य प्रदान करनेवाली तथा तीनों तापों (आधि-व्याधि-उपाधि) का शमन करनेवाली है | (122)

सर्वशान्तिकरं नित्यं तथा वन्ध्यासुपुत्रदम् |
अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यस्य विवर्धनम् ||

यह गुरुगीता सब प्रकार की शांति करनेवाली, वन्ध्या स्त्री को सुपुत्र देनेवाली, सधवा स्त्री के वैध्व्य का निवारण करनेवाली और सौभाग्य की वृद्धि करनेवाली है | (123)

आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् |
निष्कामजापी विधवा पठेन्मोक्षमवाप्नुयात् ||

यह गुरुगीता आयुष्य, आरोग्य, ऐश्वर्य और पुत्र-पौत्र की वृद्धि करनेवाली है | कोई विधवा निष्काम भाव से इसका जप-पाठ करे तो मोक्ष की प्राप्ति होती है | (124)

अवैधव्यं सकामा तु लभते चान्यजन्मनि ।
सर्वदुःखभयं विघ्नं नाश्येत्तापहारकम् ।।

यदि वह (विधवा) सकाम होकर जप करे तो अगले जन्म में उसको संताप हरनेवाल अवैध्व्य (सौभाग्य) प्राप्त होता है | उसके सब दुःख भय, विघ्न और संताप का नाश होता है | (125)

सर्वपापप्रशमनं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।।

इस गुरुगीता का पाठ सब पापों का शमन करता है, धर्म, अर्थ, और मोक्ष की प्राप्ति कराता है | इसके पाठ से जो-जो आकांक्षा की जाती है वह अवश्य सिद्ध होती है | (126)

लिखित्वा पूजयेद्यस्तु मोक्षश्रियम्वाप्नुयात् ।
गुरूभक्तिर्विशेषेण जायते हृदि सर्वदा ।।

यदि कोई इस गुरुगीता को लिखकर उसकी पूजा करे तो उसे लक्ष्मी और मोक्ष की प्राप्ति होती है और विशेष कर उसके हृदय में सर्वदा गुरुभक्ति उत्पन्न होती रहती है | (127)

जपन्ति शाक्ताः सौराश्च गाणपत्याश्च वैष्णवाः ।
शैवाः पाशुपताः सर्वे सत्यं सत्यं न संशयः ।।

शक्ति के, सूर्य के, गणपति के, शिव के और पशुपति के मतवादी इसका (गुरुगीता का) पाठ करते हैं यह सत्य है, सत्य है इसमें कोई संदेह नहीं है | (128)

जपं हीनासनं कुर्वन् हीनकर्माफलप्रदम् ।
गुरुगीतां प्रयाणे वा संग्रामे रिपुसंकटे ।।
जपन् जयमवाप्नोति मरणे मुक्तिदायिका ।
सर्वकमाणि सिद्धयन्ति गुरुपुत्रे न संशयः ।।

बिना आसन किया हुआ जप नीच कर्म हो जाता है और निष्फल हो जाता है | यात्रा में, युद्ध में, शत्रुओं के उपद्रव में गुरुगीता का जप-पाठ करने से विजय मिलता है | मरणकाल में जप करने से मोक्ष मिलता है | गुरुपुत्र के (शिष्य के) सर्व कार्य सिद्ध होते हैं, इसमें संदेह नहीं है | (129, 130)

गुरुमंत्रो मुखे यस्य तस्य सिद्धयन्ति नान्यथा |
दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति गुरुपुत्रके ||

जिसके मुख में गुरुमंत्र है उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं, दूसरे के नहीं | दीक्षा के कारण शिष्य के सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं | (131)

भवमूलविनाशाय चाष्टपाशनिवृतये |
गुरुगीताम्भसि स्नानं तत्वज्ञ कुरुते सदा ||
सर्वशुद्धः पवित्रोऽसौ स्वभावाद्यत्र तिष्ठति |
तत्र देवगणाः सर्वे क्षेत्रपीठे चरन्ति च ||

तत्वज्ञ पुरूष संसारूपी वृक्ष की जड़ नष्ट करने के लिए और आठों प्रकार के बन्धन (संशय, दया, भय, संकोच, निन्दा प्रतिष्ठा, कुलाभिमान और संपत्ति) की निवृति करने के लिए गुरुगीता रूपी गंगा में सदा स्नान करते रहते हैं | स्वभाव से ही सर्वथा शुद्ध और पवित्र ऐसे वे महापुरूष जहाँ रहते हैं उस तीर्थ में देवता विचरण करते हैं | (132, 133)

आसनस्था शयाना वा गच्छन्तष्तिष्ठन्तोऽपि वा |
अश्वरूढ़ा गजारूढ़ा सुषुप्ता जाग्रतोऽपि वा ||
शुचिभूता ज्ञानवन्तो गुरुगीतां जपन्ति ये |
तेषां दर्शनसंस्पर्शात् पुनर्जन्म न विद्यते ||

आसन पर बैठे हुए या लेटे हुए, खड़े रहते या चलते हुए, हाथी या घोड़े पर सवार, जाग्रतवस्था में या सुषुप्तावस्था में , जो पवित्र ज्ञानवान् पुरूष इस गुरुगीता का जप-पाठ करते हैं उनके दर्शन और स्पर्श से पुनर्जन्म नहीं होता | (134, 135)

कुशदुर्वासने देवि ह्यासने शुभ्रकम्बले |
उपविश्य ततो देवि जपेदेकाग्रमानसः ||

हे देवी ! कुश और दुर्वा के आसन पर सफ़ेद कम्बल बिछाकर उसके ऊपर बैठकर एकाग्र मन से इसका (गुरुगीता का) जप करना चाहिए (136)

शुक्लं सर्वत्र वै प्रोक्तं वश्ये रक्तासनं प्रिये |
पद्मासने जपेन्नित्यं शान्तिवश्यकरं परम् ||

सामन्यतया सफ़ेद आसन उचित है परंतु वशीकरण में लाल आसन आवश्यक है | हे प्रिये ! शांति प्राप्ति के लिए या वशीकरण में नित्य पद्मासन में बैठकर जप करना चाहिए | (137)

वस्त्रासने च दारिद्रयं पाषाणे रोगसंभवः |
मेदिन्यां दुःखमाप्नोति काष्ठे भवति निष्फलम् ||

कपड़े के आसन पर बैठकर जप करने से दारिद्रय आता है, पत्थर के आसन पर रोग, भूमि पर बैठकर जप करने से दुःख आता है और लकड़ी के आसन पर किये हुए जप निष्फल होते हैं | (138)

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिः मोक्षश्री व्याघ्रचर्मणि |
कुशासने ज्ञानसिद्धिः सर्वसिद्धिस्तु कम्बले ||

काले मृगचर्म और दर्भासन पर बैठकर जप करने से ज्ञानसिद्धि होती है, व्याग्रचर्म पर जप करने से मुक्ति प्राप्त होती है, परन्तु कम्बल के आसन पर सर्व सिद्धि प्राप्त होती है | (139)

आग्नेय्यां कर्षणं चैव वयव्यां शत्रुनाशनम् |
नैरृत्यां दर्शनं चैव ईशान्यां ज्ञानमेव च ||

अग्नि कोण की तरफ मुख करके जप-पाठ करने से आकर्षण, वायव्य कोण की तरफ़ शत्रुओं का नाश, नैरृत्य कोण की तरफ दर्शन और ईशान कोण की तरफ मुख करके जप-पाठ करने से ज्ञान की प्रप्ति है | (140)

उदंमुखः शान्तिजाप्ये वश्ये पूर्वमुखतथा |

याम्ये तु मारणं प्रोक्तं पश्चिमे च धनागमः ||

उत्तर दिशा की ओर मुख करके पाठ करने से शांति, पूर्व दिशा की ओर वशीकरण, दक्षिण दिशा की ओर मारण सिद्ध होता है तथा पश्चिम दिशा की ओर मुख करके जप-पाठ करने से धन प्राप्ति होती है | (141)

|| इति श्री स्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे श्री गुरुगीतायां द्वितीयोऽध्यायः ||

|| अथ तृतीयोऽध्यायः ||

अथ काम्यजपस्थानं कथयामि वरानने |
सागरान्ते सरित्तीरे तीर्थे हरिहरालये ||
शक्तिदेवालये गोष्ठे सर्वदेवालये शुभे |
वटस्य धात्र्या मूले व मठे वृन्दावने तथा ||
पवित्रे निर्मले देशे नित्यानुष्ठानोऽपि वा |
निर्वेदनेन मौनेन जपमेतत् समारभेत् ||

तीसरा अध्याय

हे सुमुखी ! अब सकामियों के लिए जप करने के स्थानों का वर्णन करता हूँ | सागर या नदी के तट पर, तीर्थ में, शिवालय में, विष्णु के या देवी के मंदिर में, गौशाला में, सभी शुभ देवालयों में, वटवृक्ष के या आँवले के वृक्ष के नीचे, मठ में, तुलसीवन में, पवित्र निर्मल स्थान में, नित्यानुष्ठान के रूप में अनासक्त रहकर मौनपूर्वक इसके जप का आरंभ करना चाहिए |

जाप्येन जयमाप्नोति जपसिद्धिं फलं तथा |
हीनकर्म त्यजेत्सर्वं गर्हितस्थानमेव च ||

जप से जय प्राप्त होता है तथा जप की सिद्धि रूप फल मिलता है | जपानुष्ठान के काल में सब नीच कर्म और निन्दित स्थान का त्याग करना चाहिए | (145)

स्मशाने बिल्वमूले वा वटमूलान्तिके तथा |
सिद्ध्यन्ति कानके मूले चूतवृक्षस्य सन्निधौ ||

स्मशान में, बिल्व, वटवृक्ष या कनकवृक्ष के नीचे और आम्रवृक्ष के पास जप करने से से सिद्धि जल्दी होती है | (146)

आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञव्रततपः क्रियाः |
ताः सर्वाः सफला देवि गुरुसंतोषमात्रतः ||

हे देवी ! कल्प पर्यन्त के, करोंड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ, ये सब गुरुदेव के संतोषमात्र से सफल हो जाते हैं | (147)

मंदभाग्या ह्यशक्ताश्च ये जना नानुमन्वते |
गुरुसेवासु विमुखाः पच्यन्ते नरकेऽशुचौ ||

भाग्यहीन, शक्तिहीन और गुरुसेवा से विमुख जो लोग इस उपदेश को नहीं मानते वे घोर नरक में पड़ते हैं | (148)

विद्या धनं बलं चैव तेषां भाग्यं निरर्थकम् |
येषां गुरुकृपा नास्ति अधो गच्छन्ति पार्वति ||

जिसके ऊपर श्री गुरुदेव की कृपा नहीं है उसकी विद्या, धन, बल और भाग्य निरर्थक है| हे पार्वती ! उसका अधःपतन होता है | (149)

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोदभवः|
धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता ||

जिसके अंदर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेनेवाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है | (150)

शरीरमिन्द्रियं प्राणच्चार्थः स्वजनबन्धुतां |
मातृकुलं पितृकुलं गुरुरेव न संशयः ||

शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, धन, स्वजन, बन्धु-बान्धव, माता का कुल, पिता का कुल ये सब गुरुदेव ही हैं | इसमें संशय नहीं है | (151)

गुरुर्देवो गुरुर्धर्मो गुरौ निष्ठा परं तपः |
गुरोः परतरं नास्ति त्रिवारं कथयामि ते ||

गुरु ही देव हैं, गुरु ही धर्म हैं, गुरु में निष्ठा ही परम तप है | गुरु से अधिक और कुछ नहीं है यह मैं तीन बार कहता हूँ | (152)

समुद्रे वै यथा तोयं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् |
भिन्ने कुंभे यथाऽऽकाशं तथाऽऽत्मा परमात्मनि ||

जिस प्रकार सागर में पानी, दूध में दूध, घी में घी, अलग-अलग घटों में आकाश एक और अभिन्न है उसी प्रकार परमात्मा में जीवात्मा एक और अभिन्न है | (153)

तथैव ज्ञानवान् जीव परमात्मनि सर्वदा |
ऐक्येन रमते ज्ञानी यत्र कुत्र दिवानिशम् ||

इसी प्रकार ज्ञानी सदा परमात्मा के साथ अभिन्न होकर रात-दिन आनंदविभोर होकर सर्वत्र विचरते हैं | (154)

गुरुसन्तोषणादेव मुक्तो भवति पार्वति |
अणिमादिषु भोक्तृत्वं कृपया देवि जायते ||

हे पार्वति ! गुरुदेव को संतुष्ट करने से शिष्य मुक्त हो जाता है | हे देवी ! गुरुदेव की कृपा से वह अणिमादि सिद्धियों का भोग प्राप्त करता है| (155)

साम्येन रमते ज्ञानी दिवा वा यदि वा निशि |
एवं विधौ महामौनी त्रैलोक्यसमतां व्रजेत् ||

ज्ञानी दिन में या रात में, सदा सर्वदा समत्व में रमण करते हैं | इस प्रकार के महामौनी अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ महात्मा तीनों लोकों मे समान भाव से गति करते हैं | (156)

गुरुभावः परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम् ।
सर्वतीर्थमयं देवि श्रीगुरोश्चरणाम्बुजम् ।।

गुरुभक्ति ही सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है | अन्य तीर्थ निरर्थक हैं | हे देवी ! गुरुदेव के चरणकमल सर्वतीर्थमय हैं | (157)

कन्याभोगरतामन्दाः स्वकान्तायाः पराङ्मुखाः ।
अतः परं मया देवि कथितन्न मम प्रिये ।।

हे देवी ! हे प्रिये ! कन्या के भोग में रत, स्वस्त्री से विमुख (परस्त्रीगामी) ऐसे बुद्धिशून्य लोगों को मेरा यह आत्मप्रिय परमबोध मैंने नहीं कहा | (158)

अभक्ते वंचके धूर्ते पाखंडे नास्तिकादिषु ।
मनसाऽपि न वक्तव्या गुरुगीता कदाचन ।।

अभक्त, कपटी, धूर्त, पाखण्डी, नास्तिक इत्यादि को यह गुरुगीता कहने का मन में सोचना तक नहीं | (159)

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः ।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यह्यतापहारकम् ।।

शिष्य के धन को अपहरण करनेवाले गुरु तो बहुत हैं लेकिन शिष्य के हृदय का संताप हरनेवाला एक गुरु भी दुर्लभ है ऐसा मैं मानता हूँ | (160)

चातुर्यवान्विवेकी च अध्यात्मज्ञानवान् शुचिः ।
मानसं निर्मलं यस्य गुरुत्वं तस्य शोभते ।।

जो चतुर हों, विवेकी हों, अध्यात्म के ज्ञाता हों, पवित्र हों तथा निर्मल मानसवाले हों उनमें गुरुत्व शोभा पाता है | (161)

गुरवो निर्मलाः शान्ताः साधवो मितभाषिणः |
कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः ||

गुरु निर्मल, शांत, साधु स्वभाव के, मितभाषी, काम-क्रोध से अत्यंत रहित, सदाचारी और जितेन्द्रिय होते हैं | (162)

सूचकादि प्रभेदेन गुरवो बहुधा स्मृताः |
स्वयं समयक् परीक्ष्याथ तत्वनिष्ठं भजेत्सुधीः ||

सूचक आदि भेद से अनेक गुरु कहे गये हैं | बिद्धिमान् मनुष्य को स्वयं योग्य विचार करके तत्वनिष्ठ सदगुरु की शरण लेनी चाहिए| (163)

वर्णजालमिदं तद्वद्बाह्यशास्त्रं तु लौकिकम् |
यस्मिन् देवि समभ्यस्तं स गुरुः सूचकः स्मृतः ||

हे देवी ! वर्ण और अक्षरों से सिद्ध करनेवाले बाह्य लौकिक शास्त्रों का जिसको अभ्यास हो वह गुरु सूचक गुरु कहलाता है| (164)

वर्णाश्रमोचितां विद्यां धर्माधर्मविधायिनीम् |
प्रवक्तारं गुरुं विद्धि वाचकस्त्वति पार्वति ||

हे पार्वती ! धर्माधर्म का विधान करनेवाली, वर्ण और आश्रम के अनुसार विद्या का प्रवचन करनेवाले गुरु को तुम वाचक गुरु जानो | (165)

पंचाक्षर्यादिमंत्राणामुपदेष्टा त पार्वति |
स गुरुर्बोधको भूयादुभयोरमुत्तमः ||

पंचाक्षरी आदि मंत्रों का उपदेश देनेवाले गुरु बोधक गुरु कहलाते हैं | हे पार्वती ! प्रथम दो प्रकार के गुरुओं से यह गुरु उत्तम हैं | (166)

मोहमारणवश्यादितुच्छमंत्रोपदर्शिनम् |
निषिद्धगुरुरित्याहुः पण्डितस्तत्वदर्शिनः ||

मोहन, मारण, वशीकरण आदि तुच्छ मंत्रों को बतानेवाले गुरु को तत्वदर्शी पंडित निषिद्ध गुरु कहते हैं | (167)

अनित्यमिति निर्दिश्य संसारे संकटालयम् |
वैराग्यपथदर्शी यः स गुरुर्विहितः प्रिये ||

हे प्रिये ! संसार अनित्य और दुःखों का घर है ऐसा समझाकर जो गुरु वैराग्य का मार्ग बताते हैं वे विहित गुरु कहलाते हैं | (168)

तत्वमस्यादिवाक्यानामुपदेष्टा तु पार्वति |
कारणाख्यो गुरुः प्रोक्तो भवरोगनिवारकः ||

हे पार्वती ! तत्वमसि आदि महावाक्यों का उपदेश देनेवाले तथा संसाररूपी रोगों का निवारण करनेवाले गुरु कारणाख्य गुरु कहलाते हैं | (169)

सर्वसन्देहसन्दोहनिर्मूलनविचक्षणः |
जन्ममृत्युभयघ्नो यः स गुरुः परमो मतः ||

सर्व प्रकार के सन्देहों का जड़ से नाश करने में जो चतुर हैं, जन्म, मृत्यु तथा भय का जो विनाश करते हैं वे परम गुरु कहलाते हैं, सदगुरु कहलाते हैं | (170)

बहुजन्मकृतात् पुण्याल्लभ्यतेऽसौ महागुरुः |
लब्ध्वाऽमुं न पुनर्याति शिष्यः संसारबन्धनम् ||

अनेक जन्मों के किये हुए पुण्यों से ऐसे महागुरु प्राप्त होते हैं | उनको प्राप्त कर शिष्य पुनः संसारबन्धन में नहीं बँधता अर्थात् मुक्त हो जाता है | (171)

एवं बहुविधालोके गुरवः सन्ति पार्वति ।
तेषु सर्वप्रत्नेन सेव्यो हि परमो गुरुः ।।

हे पर्वती ! इस प्रकार संसार में अनेक प्रकार के गुरु होते हैं | इन सबमें एक परम गुरु का ही सेवन सर्व प्रयत्नों से करना चाहिए | (172)

पार्वत्युवाच
स्वयं मूढा मृत्युभीताः सुकृताद्विरतिं गताः ।
दैवन्निषिद्धगुरुगा यदि तेषां तु का गतिः ।।

पर्वती ने कहा

प्रकृति से ही मूढ, मृत्यु से भयभीत, सत्कर्म से विमुख लोग यदि दैवयोग से निषिद्ध गुरु का सेवन करें तो उनकी क्या गति होती है | (173)

श्रीमहादेव उवाच

निषिद्धगुरुशिष्यस्तु दुष्टसंकल्पदूषितः ।
ब्रह्मप्रलयपर्यन्तं न पुनर्याति मृत्यताम् ।।

श्री महादेवजी बोले

निषिद्ध गुरु का शिष्य दुष्ट संकल्पों से दूषित होने के कारण ब्रह्मप्रलय तक मनुष्य नहीं होता, पशुयोनि में ही रहता है | (174)

श्रृणु तत्वमिदं देवि यदा स्याद्विरतो नरः ।
तदाऽसावधिकारीति प्रोच्यते श्रुतमस्तकैः ।।

हे देवी ! इस तत्व को ध्यान से सुनो | मनुष्य जब विरक्त होता है तभी वह अधिकारी कहलाता है, ऐसा उपनिषद कहते हैं | अर्थात् दैव योग से गुरु प्राप्त होने की बात अलग है और विचार से गुरु चुनने की बात अलग है | (175)

अखण्डैकरसं ब्रह्म नित्यमुक्तं निरामयम् |
स्वस्मिन संदर्शितं येन स भवेदस्य देशिकः ||

अखण्ड, एकरस, नित्यमुक्त और निरामय ब्रह्म जो अपने अंदर ही दिखाते हैं वे ही गुरु होने चाहिए | (176)

जलानां सागरो राजा यथा भवति पार्वति |
गुरुणां तत्र सर्वेषां राजायं परमो गुरुः ||

हे पार्वती ! जिस प्रकार जलाशयों में सागर राजा है उसी प्रकार सब गुरुओं में से ये परम गुरु राजा हैं | (177)

मोहादिरहितः शान्तो नित्यतृप्तो निराश्रयः |
तृणीकृतब्रह्मविष्णुवैभवः परमो गुरुः ||

मोहादि दोषों से रहित, शांत, नित्य तृप्त, किसीके आश्रयरहित अर्थात् स्वाश्रयी, ब्रह्मा और विष्णु के वैभव को भी तृणवत् समझनेवाले गुरु ही परम गुरु हैं | (178)

सर्वकालविदेशेषु स्वतंत्रो निश्चलस्सुखी |
अखण्डैकरसास्वादतृप्तो हि परमो गुरुः ||

सर्व काल और देश में स्वतंत्र, निश्चल, सुखी, अखण्ड, एक रस के आनन्द से तृप्त ही सचमुच परम गुरु हैं | (179)

द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तः स्वानुभूतिप्रकाशवान् |
अज्ञानान्धमश्छेत्ता सर्वज्ञ परमो गुरुः ||

द्वैत और अद्वैत से मुक्त, अपने अनुभुवरूप प्रकाशवाले, अज्ञानरूपी अंधकार को छेदनेवाले और सर्वज्ञ ही परम गुरु हैं | (180)

यस्य दर्शनमात्रेण मनसः स्यात् प्रसन्नता |
स्वयं भूयात् धृतिश्शान्तिः स भवेत् परमो गुरुः ||

जिनके दर्शनमात्र से मन प्रसन्न होता है, अपने आप धैर्य और शांति आ जाती है वे परम गुरु हैं | (181)

स्वशरीरं शवं पश्यन् तथा स्वात्मानमद्वयम् |
यः स्त्रीकनकमोहघ्नः स भवेत् परमो गुरुः ||

जो अपने शरीर को शव समान समझते हैं अपने आत्मा को अद्वय जानते हैं, जो कामिनी और कंचन के मोह का नाशकर्ता हैं वे परम गुरु हैं | (182)

मौनी वाग्मीति तत्वज्ञो द्विधाभूच्छृणु पार्वति |
न कश्चिन्मौनिना लाभो लोकेऽस्मिन्भवति प्रिये ||
वाग्मी तूत्कटसंसारसागरोत्तारणक्षमः |
यतोऽसौ संशयच्छेत्ता शास्त्रयुक्त्यनुभूतिभिः ||

हे पार्वती ! सुनो | तत्वज्ञ दो प्रकार के होते हैं | मौनी और वक्ता | हे प्रिये ! इन दोंनों में से मौनी गुरु द्वारा लोगों को कोई लाभ नहीं होता, परन्तु वक्ता गुरु भयंकर संसारसागर को पार कराने में समर्थ होते हैं | क्योंकि शास्त्र, युक्ति (तर्क) और अनुभूति से वे सर्व संशयों का छेदन करते हैं | (183, 184)

गुरुनामजपाद्येवि बहुजन्मार्जितान्यपि |
पापानि विलयं यान्ति नास्ति सन्देहमण्वपि ||

हे देवी ! गुरुनाम के जप से अनेक जन्मों के इकट्ठे हुए पाप भी नष्ट होते हैं, इसमें अणुमात्र संशय नहीं है | (185)

कुलं धनं बलं शास्त्रं बान्धवास्सोदरा इमे |
मरणे नोपयुज्यन्ते गुरुरेको हि तारकः ||

अपना कुल, धन, बल, शास्त्र, नाते-रिश्तेदार, भाई, ये सब मृत्यु के अवसर पर काम नहीं आते | एकमात्र गुरुदेव ही उस समय तारणहार हैं | (186)

कुलमेव पवित्रं स्यात् सत्यं स्वगुरुसेवया |
तृप्ताः स्युस्स्कला देवा ब्रह्माद्या गुरुतर्पणात् ||

सचमुच, अपने गुरुदेव की सेवा करने से अपना कुल भी पवित्र होता है | गुरुदेव के तर्पण से ब्रह्मा आदि सब देव तृप्त होते हैं | (187)

स्वरूपज्ञानशून्येन कृतमप्यकृतं भवेत् |
तपो जपादिकं देवि सकलं बालजल्पवत् ||

हे देवी ! स्वरूप के ज्ञान के बिना किये हुए जप-तपादि सब कुछ नहीं किये हुए के बराबर हैं, बालक के बकवाद के समान (व्यर्थ) हैं | (188)

न जानन्ति परं तत्वं गुरुदीक्षापराङ्मुखाः |
भ्रान्ताः पशुसमा ह्येते स्वपरिज्ञानवर्जिताः ||

गुरुदीक्षा से विमुख रहे हुए लोग भ्रांत हैं, अपने वास्तविक ज्ञान से रहित हैं | वे सचमुच पशु के समान हैं | परम तत्व को वे नहीं जानते | (189)

तस्मात्कैवल्यसिद्धयर्थं गुरुमेव भजेत्प्रिये |
गुरुं विना न जानन्ति मूढास्तत्परमं पदम् ||

इसलिये हे प्रिये ! कैवल्य की सिद्धि के लिए गुरु का ही भजन करना चाहिए | गुरु के बिना मूढ लोग उस परम पद को नहीं जान सकते | (190)

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः |
क्षीयन्ते सर्वकर्माणि गुरोः करुणया शिवे ||

हे शिवे ! गुरुदेव की कृपा से हृदय की ग्रन्थि छिन्न हो जाती है, सब संशय कट जाते हैं और सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं | (191)

कृताया गुरुभक्तेस्तु वेदशास्त्रनुसारतः |
मुच्यते पातकाद् घोराद् गुरुभक्तो विशेषतः ||

वेद और शास्त्र के अनुसार विशेष रूप से गुरु की भक्ति करने से गुरुभक्त घोर पाप से भी मुक्त हो जाता है | (192)

दुःसंगं च परित्यज्य पापकर्म परित्यजेत् |
चित्तचिह्नमिदं यस्य तस्य दीक्षा विधीयते ||

दुर्जनों का संग त्यागकर पापकर्म छोड़ देने चाहिए | जिसके चित्त में ऐसा चिह्न देखा जाता है उसके लिए गुरुदीक्षा का विधान है | (193)

चित्तत्यागनियुक्तश्च क्रोधगर्वविवर्जितः |
द्वैतभावपरित्यागी तस्य दीक्षा विधीयते ||

चित्त का त्याग करने में जो प्रयत्नशील है, क्रोध और गर्व से रहित है, द्वैतभाव का जिसने त्याग किया है उसके लिए गुरुदीक्षा का विधान है | (194)

एतल्लक्षणसंयुक्तं सर्वभूतहिते रतम् |
निर्मलं जीवितं यस्य तस्य दीक्षा विधीयते ||

जिसका जीवन इन लक्षणों से युक्त हो, निर्मल हो, जो सब जीवों के कल्याण में रत हो उसके लिए गुरुदीक्षा का विधान है | (195)

अत्यन्तचित्तपक्वस्य श्रद्धाभक्तियुतस्य च |
प्रवक्तव्यमिदं देवि ममात्मप्रीतये सदा ||

हे देवी ! जिसका चित्त अत्यन्त परिपक्व हो, श्रद्धा और भक्ति से युक्त हो उसे यह तत्व सदा मेरी प्रसन्नता के लिए कहना चाहिए | (196)

सत्कर्मपरिपाकाच्च चित्तशुद्धस्य धीमतः |
साधकस्यैव वक्तव्या गुरुगीता प्रयत्नतः ||

सत्कर्म के परिपाक से शुद्ध हुए चित्तवाले बुद्धिमान् साधक को ही गुरुगीता प्रयत्नपूर्वक कहनी चाहिए | (197)

नास्तिकाय कृतघ्नाय दांभिकाय शठाय च |
अभक्ताय विभक्ताय न वाच्येयं कदाचन ||

नास्तिक, कृतघ्न, दंभी, शठ, अभक्त और विरोधी को यह गुरुगीता कदापि नहीं कहनी चाहिए | (198)

स्त्रीलोलुपाय मूर्खाय कामोपहतचेतसे |
निन्दकाय न वक्तव्या गुरुगीतास्वभावतः ||

स्त्रीलम्पट, मूर्ख, कामवासना से ग्रस्त चित्तवाले तथा निंदक को गुरुगीता बिलकुल नहीं कहनी चाहिए | (199)

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुर्नैव मन्यते |
श्वनयोनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वपि जायते ||

एकाक्षर मंत्र का उपदेश करनेवाले को जो गुरु नहीं मानता वह सौ जन्मों में कुत्ता होकर फिर चाण्डाल की योनि में जन्म लेता है | (200)

गुरुत्यागाद् भवेन्मृत्युर्मन्त्रत्यागाद्दरिद्रता |
गुरुमंत्रपरित्यागी रौरवं नरकं व्रजेत् ||

गुरु का त्याग करने से मृत्यु होती है | मंत्र को छोड़ने से दरिद्रता आती है और गुरु एवं मंत्र दोनों का त्याग करने से रौरव नरक मिलता है | (201)

शिवक्रोधाद् गुरुस्त्राता गुरुक्रोधाच्छिवो न हि |
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराज्ञां न लंघयेत् ||

शिव के क्रोध से गुरुदेव रक्षण करते हैं लेकिन गुरुदेव के क्रोध से शिवजी रक्षण नहीं करते | अतः सब प्रयत्न से गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए | (202)

सप्तकोटिमहामंत्राश्चित्तविभ्रंशकारकाः |
एक एव महामंत्रो गुरुरित्यक्षरद्वयम् ||

सात करोड़ महामंत्र विद्यमान हैं | वे सब चित्त को भ्रमित करनेवाले हैं | गुरु नाम का दो अक्षरवाला मंत्र एक ही महामंत्र है | (203)

न मृषा स्यादियं देवि मदुक्तिः सत्यरूपिणि |
गुरुगीतासमं स्तोत्रं नास्ति नास्ति महीतले ||

हे देवी ! मेरा यह कथन कभी मिथ्या नहीं होगा | वह सत्यस्वरूप है | इस पृथ्वी पर गुरुगीता के समान अन्य कोई स्तोत्र नहीं है | (204)

गुरुगीतामिमां देवि भवदुःखविनाशिनीम् |
गुरुदीक्षाविहीनस्य पुरतो न पठेत्क्वचित् ||

भवदुःख का नाश करनेवाली इस गुरुगीता का पाठ गुरुदीक्षाविहीन मनुष्य के आगे कभी नहीं करना चाहिए | (205)

रहस्यमत्यन्तरहस्यमेतन्न पापिना लभ्यमिदं महेश्वरि |
अनेकजन्मार्जितपुण्यपाकाद् गुरोस्तु तत्वं लभते मनुष्यः ||

हे महेश्वरी ! यह रहस्य अत्यंत गुप्त रहस्य है | पापियों को वह नहीं मिलता | अनेक जन्मों के किये हुए पुण्य के परिपाक से ही मनुष्य गुरुतत्व को प्राप्त कर सकता है | (206)

सर्वतीर्थवगाहस्य संप्राप्नोति फलं नरः |
गुरोः पादोदकं पीत्वा शेषं शिरसि धारयन् ||

श्री सदगुरु के चरणामृत का पान करने से और उसे मस्तक पर धारण करने से मनुष्य सर्व तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त करता है | (207)

गुरुपादोदकं पानं गुरोरुच्छिष्टभोजनम् |
गुरुर्मूर्ते सदा ध्यानं गुरोर्नाम्नः सदा जपः ||

गुरुदेव के चरणामृत का पान करना चाहिए, गुरुदेव के भोजन में से बचा हुआ खाना, गुरुदेव की मूर्ति का ध्यान करना और गुरुनाम का जप करना चाहिए | (208)

गुरुरेको जगत्सर्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् |
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात्संपूजयेद् गुरुम् ||

ब्रह्मा, विष्णु, शिव सहित समग्र जगत गुरुदेव में समाविष्ट है | गुरुदेव से अधिक और कुछ भी नहीं है, इसलिए गुरुदेव की पूजा करनी चाहिए | (209)

ज्ञानं विना मुक्तिपदं लभ्यते गुरुभक्तितः |
गुरोः समानतो नान्यत् साधनं गुरुमार्गिणाम् ||

गुरुदेव के प्रति (अनन्य) भक्ति से ज्ञान के बिना भी मोक्षपद मिलता है | गुरु के मार्ग पर चलनेवालों के लिए गुरुदेव के समान अन्य कोई साधन नहीं है | (210)

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुशिवादयः |
सामर्थ्यमभजन् सर्वे सृष्टिस्थित्यंतकर्मणि ||

गुरु के कृपाप्रसाद से ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव यथाक्रम जगत की सृष्टि, स्थिति और लय करने का सामर्थ्य प्राप्त करते हैं | (211)

मंत्रराजमिदं देवि गुरुरित्यक्षरद्वयम् |
स्मृतिवेदपुराणानां सारमेव न संशयः ||

हे देवी ! गुरु यह दो अक्षरवाला मंत्र सब मंत्रों में राजा है, श्रेष्ठ है | स्मृतियाँ, वेद और पुराणों का वह सार ही है, इसमें संशय नहीं है | (212)

यस्य प्रसादादहमेव सर्वं मय्येव सर्वं परिकल्पितं च |
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं त्स्यांघ्रिपद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ||

मैं ही सब हूँ, मुझमें ही सब कल्पित है, ऐसा ज्ञान जिनकी कृपा से हुआ है ऐसे आत्मस्वरूप श्री सद्गुरुदेव के चरणकमलों में मैं नित्य प्रणाम करता हूँ | (213)

अज्ञानतिमिरान्धस्य विषयाक्रान्तचेतसः |
ज्ञानप्रभाप्रदानेन प्रसादं कुरु मे प्रभो ||

हे प्रभो ! अज्ञानरूपी अंधकार में अंध बने हुए और विषयों से आक्रान्त चित्तवाले मुझको ज्ञान का प्रकाश देकर कृपा करो | (214)

|| इति श्री स्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे श्री गुरुगीतायां तृतीयोऽध्यायः ||